भारतीय ज्ञान परंपरा में स्त्री की भूमिका और सशक्तिकरण

15

अंशु शर्मा
प्रो (डॉ) मीनाक्षी शर्मा

सारांश

भारतीय ज्ञान परंपरा में स्त्री की भूमिका केवल सामाजिक या पारिवारिक दायित्वों तक सीमित नहीं रही, बल्कि वह ज्ञान, शिक्षा, दर्शन, आध्यात्मिकता और सांस्कृतिक विकास की प्रमुख संवाहक रही है। वैदिक काल में स्त्रियों को शिक्षा, वेदाध्ययन, यज्ञ–अनुष्ठान तथा शास्त्रार्थ में सहभागिता का अधिकार प्राप्त था, जिससे उनकी बौद्धिक एवं आध्यात्मिक सशक्तता स्पष्ट होती है। ऋषिकाओं, ब्रह्मवादिनियों और विदुषियों ने ज्ञान सृजन में महत्वपूर्ण योगदान दिया। यद्यपि उत्तरवैदिक एवं मध्यकालीन परिस्थितियों में स्त्री की स्थिति में गिरावट आई तथापि भारतीय दर्शन में 'शक्ति' एवं 'माता' की अवधारणा ने नारी गरिमा को निरंतर प्रतिष्ठित रखा। आधुनिक समय में शिक्षा, संवैधानिक अधिकारों तथा नीतिगत प्रयासों के माध्यम से स्त्री सशक्तिकरण को पुनर्स्थापित किया जा रहा है। यह शोध भारतीय ज्ञान परंपरा के ऐतिहासिक, दार्शनिक एवं सामाजिक आयामों का विश्लेषण करते हुए स्त्री की भूमिका एवं सशक्तिकरण की निरंतरता को रेखांकित करता है तथा परंपरा और आधुनिकता के समन्वय को भविष्य के विकास का आधार मानता है।

मुख्य शब्दः *भारतीय ज्ञान परंपरा, स्त्री शिक्षा, महिला सशक्तिकरण, वैदिक समाज, ब्रह्मवादिनी, सामाजिक परिवर्तन, लैंगिक समानता।*

प्रस्तावना–

भारतीय सभ्यता विश्व की प्राचीनतम और समृद्ध ज्ञान परंपराओं में से एक मानी जाती है, जिसकी जड़ें वैदिक युग से लेकर आधुनिक काल तक निरंतर प्रवाहित होती रही हैं। यहाँ ज्ञान केवल सूचना या बौद्धिक अर्जन का माध्यम नहीं रहा, बल्कि जीवन–पद्धति, नैतिकता, आध्यात्मिकता और सामाजिक उत्तरदायित्व का समन्वित स्वरूप रहा है। भारतीय चिंतन में धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष जैसे पुरुषार्थों

अंशु शर्मा
असिस्टेंट प्रोफेसर, राजनीति विज्ञान विभाग, बरेली कॉलेज, बरेली
प्रो (डॉ) मीनाक्षी शर्मा
विभागाध्यक्ष, राजनीति विज्ञान विभाग, गोकुल दास हिंदू गर्ल्स डिग्री कॉलेज, मुरादाबाद
Publisher: Anu Books, DOI: https://doi.org/10.31995/Book.AB356-A26. Ch.15
Book Name : भारतीय ज्ञान परम्परा और सामाजिक विज्ञान
Plagiarism Report: 03%

के माध्यम से मानव जीवन को संतुलित एवं सार्थक बनाने का प्रयास किया गया है। इसी व्यापक दृष्टिकोण के अंतर्गत शिक्षा, संस्कृति और सामाजिक संरचना का विकास हुआ, जिसमें स्त्री और पुरुष दोनों को समान रूप से सहभागी माना गया। अतः भारतीय ज्ञान परंपरा को समझे बिना स्त्री की भूमिका का सम्यक् मूल्यांकन संभव नहीं है।

भारतीय ज्ञान परंपरा की संकल्पना वेद, उपनिषद, स्मृतियाँ, पुराण, दर्शन, योग तथा लोकपरंपराओं में निहित उस बौद्धिक धारा से है, जो मानव कल्याण को केंद्र में रखती है। विशेष रूप से ऋग्वेद सहित वैदिक साहित्य में स्त्रियों को 'ब्रह्मवादिनी', 'विदुषी' एवं 'सहधर्मिणी' के रूप में प्रतिष्ठा प्राप्त थी। ज्ञानार्जन, यज्ञ, शास्त्रार्थ और सामाजिक निर्णयों में उनकी सक्रिय भागीदारी यह सिद्ध करती है कि उस काल में स्त्री को केवल पारिवारिक भूमिका तक सीमित नहीं किया गया था। भारतीय संस्कृति में स्त्री को 'शक्ति', 'माता' और 'सरस्वती' के प्रतीक के रूप में सम्मानित किया जाना उसकी गरिमा और बौद्धिक क्षमता का द्योतक है।

ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक दृष्टि से देखा जाए तो विभिन्न कालखंडों में स्त्री की स्थिति में उतार–चढ़ाव देखने को मिलते हैं। वैदिक काल की अपेक्षाकृत स्वतंत्रता के पश्चात उत्तरवैदिक और मध्यकालीन समय में सामाजिक रूढ़ियों एवं पितृसत्तात्मक व्यवस्थाओं ने उसकी स्वायत्तता को सीमित किया। परिणामस्वरूप शिक्षा, संपत्ति और निर्णय–प्रक्रिया में उसकी भागीदारी घटती गई। फिर भी भक्ति आंदोलन, सामाजिक सुधार आंदोलनों और आधुनिक शिक्षा ने पुनः स्त्री सशक्तिकरण की दिशा में महत्वपूर्ण परिवर्तन किए।

वर्तमान परिप्रेक्ष्य में जब लैंगिक समानता, महिला अधिकार और सामाजिक न्याय की चर्चा व्यापक रूप से हो रही है, तब भारतीय ज्ञान परंपरा में स्त्री की मूल भूमिका का पुनर्पाठ अत्यंत आवश्यक हो जाता है। यह शोध न केवल ऐतिहासिक तथ्यों का विश्लेषण करता है, बल्कि यह स्पष्ट करने का प्रयास भी करता है कि परंपरागत ज्ञान और आधुनिक मूल्यों के समन्वय से स्त्री सशक्तिकरण को अधिक प्रभावी बनाया जा सकता है। अतः इस विषय का अध्ययन सामाजिक चेतना, नीति निर्माण और शैक्षिक विकास के लिए अत्यंत औचित्यपूर्ण एवं प्रासंगिक है।

भारतीय ज्ञान परंपरा : स्वरूप एवं दार्शनिक आधार

भारतीय ज्ञान परंपरा का स्वरूप अत्यंत व्यापक, समन्वित तथा जीवनोपयोगी रहा है। यहाँ 'ज्ञान' का अर्थ केवल बौद्धिक सूचना या शास्त्रीय विद्वता तक सीमित नहीं है, बल्कि वह आत्मबोध, नैतिक आचरण, सामाजिक समरसता और आध्यात्मिक उन्नति का माध्यम भी है। 'परंपरा' का तात्पर्य उस सतत प्रवाह से है, जो गुरु से शिष्य, पीढ़ी से पीढ़ी और समाज से संस्कृति तक हस्तांतरित होता रहता है। इस प्रकार भारतीय ज्ञान परंपरा अनुभव, आस्था और तर्क के संतुलन पर आधारित एक जीवंत परंपरा है। विद्वानों का मत है कि भारतीय चिंतन में ज्ञान का अंतिम उद्देश्य 'सत्य की प्राप्ति' और 'लोकमंगल' है।[1]

इस परंपरा के मूल स्रोत वेद, उपनिषद, स्मृतियाँ, पुराण, विभिन्न दर्शन, योगशास्त्र तथा आयुर्वेद आदि हैं, जिनमें जीवन के विविध आयामों का सुविस्तृत विवेचन मिलता है। वेदों में प्रकृति, देवत्व और मानव जीवन के सामंजस्य का वर्णन है, जबकि उपनिषद आत्मा और ब्रह्म के गूढ़ दार्शनिक रहस्यों को उद्घाटित करते हैं। स्मृतियाँ सामाजिक आचरण के नियम प्रस्तुत करती हैं, पुराण सांस्कृतिक चेतना को जनसुलभ बनाते हैं, दर्शन तर्कपूर्ण चिंतन को दिशा देते हैं, योग मानसिक–शारीरिक संतुलन का मार्ग प्रशस्त करता है तथा आयुर्वेद स्वास्थ्य विज्ञान का आधार प्रदान करता है। इस बहुआयामी ज्ञान–संपदा ने भारतीय समाज को समग्र विकास की दृष्टि प्रदान की है।[2]

भारतीय ज्ञान परंपरा का दार्शनिक आधार धर्म, कर्म, मोक्ष तथा पुरुषार्थ चतुष्टय की अवधारणा में निहित है। धर्म व्यक्ति को नैतिक कर्तव्य का बोध कराता है, कर्म जीवन की सक्रियता को दिशा देता है, अर्थ और काम सांसारिक आवश्यकताओं की पूर्ति करते हैं तथा मोक्ष परम लक्ष्य के रूप में आत्मिक मुक्ति का प्रतीक है। यह समन्वय जीवन को संतुलित और मूल्यपरक बनाता है। इसी आधार पर शिक्षा और गुरुकुल व्यवस्था विकसित हुई, जहाँ विद्यार्थी केवल शास्त्रज्ञान ही नहीं, बल्कि अनुशासन, सेवा, संयम और सहअस्तित्व जैसे गुणों का भी अभ्यास करते थे। गुरुकुलों में प्रकृति के सान्निध्य में समग्र व्यक्तित्व निर्माण पर बल दिया जाता था।[3]

अंततः कहा जा सकता है कि भारतीय ज्ञान परंपरा में नैतिकता और सामाजिक मूल्यों का विशेष स्थान रहा है। सत्य, अहिंसा, दया, करुणा, सहिष्णुता और परोपकार जैसे आदर्शों ने समाज को मानवीयता की दिशा में अग्रसर किया। यही कारण है कि यह परंपरा केवल ज्ञानार्जन की प्रक्रिया न होकर एक सांस्कृतिक जीवनदृष्टि है, जो व्यक्ति और समाज दोनों के उत्कर्ष का आधार बनती है।

वैदिक काल में स्त्री की स्थिति एवं भूमिका

वैदिक काल भारतीय इतिहास का वह चरण है जिसमें सामाजिक, सांस्कृतिक तथा शैक्षिक जीवन अत्यंत संतुलित, उदार और समन्वित स्वरूप में विकसित हुआ था। इस काल में स्त्री को समाज की सहगामिनी, सहधर्मिणी तथा ज्ञान की सहभागी के रूप में प्रतिष्ठा प्राप्त थी। परिवार, शिक्षा, धर्मकर्म और सामाजिक निर्णयों में उसकी सक्रिय भागीदारी यह प्रमाणित करती है कि उस समय स्त्री को केवल गृहस्थ जीवन तक सीमित नहीं माना गया, बल्कि उसे सामाजिक संरचना का अनिवार्य अंग समझा गया। विद्वानों का मत है कि वैदिक समाज में स्त्री–पुरुष संबंध प्रतिस्पर्धा नहीं, बल्कि परस्पर सहयोग पर आधारित थे।[4]

शिक्षा एवं वेदाध्ययन का अधिकार स्त्रियों को समान रूप से प्राप्त था। कन्याएँ गुरुकुलों में प्रवेश लेकर ब्रह्मचर्य का पालन करती थीं और वेद, व्याकरण, दर्शन तथा तर्कशास्त्र का अध्ययन करती थीं। जो स्त्रियाँ आजीवन ज्ञान–साधना में प्रवृत्त रहती थीं उन्हें 'ब्रह्मवादिनी' कहा जाता था, जबकि विवाहोपरांत भी जो धार्मिक कर्तव्यों में सहभागी रहती थीं उन्हें 'सद्योद्वाहा' कहा गया है। वैदिक साहित्य में

अनेक ऋषिकाओं एवं विदुषियों का उल्लेख मिलता है, जिनमें गार्गी वाचक्नवी, मैत्रेयी तथा लोपामुद्रा प्रमुख हैं। गार्गी ने ब्रह्मविद्या पर गूढ़ शास्त्रार्थ किए, मैत्रेयी ने आत्मज्ञान को धन से श्रेष्ठ माना और लोपामुद्रा ने ऋचाओं की रचना कर दार्शनिक चेतना को अभिव्यक्ति दी। यह उदाहरण सिद्ध करते हैं कि स्त्रियाँ ज्ञान–सृजन में अग्रणी थीं।[5]

धार्मिक एवं सामाजिक क्रियाकलापों में भी स्त्रियों की सक्रिय भागीदारी थी। यज्ञ, अनुष्ठान, सभा तथा समिति जैसे राजनीतिक–सामाजिक मंचों पर उनकी उपस्थिति उल्लेखनीय थी। पत्नी को पति की 'सहधर्मिणी' माना गया, जिसके बिना कोई भी यज्ञ पूर्ण नहीं होता था। वैदिक मंत्रों में पति–पत्नी को 'द्वौ पक्षौ' अर्थात् जीवन–रथ के दो पहिए कहा गया है। विशेषतः ऋग्वेद में अनेक सूक्त स्त्रियों द्वारा रचित हैं, जो उनके बौद्धिक सामर्थ्य और आध्यात्मिक उत्कर्ष को प्रमाणित करते हैं। इससे स्पष्ट है कि वैदिक काल में स्त्री सम्मान, अधिकार और गरिमा की प्रतीक थी।[6]

उत्तरवैदिक एवं मध्यकालीन काल में स्त्री की स्थिति

उत्तरवैदिक काल से सामाजिक संरचना में धीरे–धीरे परिवर्तन आरंभ हुआ। कृषि–आधारित अर्थव्यवस्था, संपत्ति के निजी स्वामित्व तथा वंशपरंपरा की अवधारणा ने पितृसत्तात्मक व्यवस्था को मजबूत किया। परिणामस्वरूप स्त्री की स्वतंत्रता सीमित होने लगी और उसकी भूमिका घरेलू दायित्वों तक सिमटती चली गई। शिक्षा में उसके प्रवेश पर प्रतिबंध लगाए गए और वैदिक अधिकारों का ह्रास हुआ। सामाजिक रूढ़ियों ने स्त्री को निर्भर एवं गौण स्थिति में ला खड़ा किया। इतिहासकारों का मत है कि इस काल में स्त्री की सामाजिक प्रतिष्ठा में स्पष्ट गिरावट आई।[7]

मध्यकाल में बाल विवाह, पर्दा प्रथा और सती प्रथा जैसी कुप्रथाओं ने स्त्री की स्थिति को और दयनीय बना दिया। शिक्षा और संपत्ति से वंचित कर उसे पारिवारिक मर्यादाओं में बाँध दिया गया। परंतु इसी काल में भक्ति आंदोलन ने एक नई चेतना का संचार किया। भक्ति परंपरा ने ईश्वर भक्ति को जाति और लिंग के बंधनों से मुक्त कर समानता का संदेश दिया। फलस्वरूप स्त्रियों ने पुनः आध्यात्मिक एवं सामाजिक क्षेत्र में सक्रियता दिखाई। संत कवयित्रियों ने भक्ति साहित्य के माध्यम से आत्माभिव्यक्ति और आध्यात्मिक स्वतंत्रता का मार्ग प्रशस्त किया। यह आंदोलन स्त्री अस्मिता के पुनर्जागरण का आधार बना।[8]

भारतीय ज्ञान परंपरा में स्त्री–सशक्तिकरण के दार्शनिक आयाम

भारतीय ज्ञान परंपरा में स्त्री–सशक्तिकरण का आधार केवल सामाजिक अधिकारों तक सीमित नहीं है, बल्कि उसका दार्शनिक एवं आध्यात्मिक आधार भी अत्यंत सुदृढ़ है। 'शक्ति सिद्धांत' के अनुसार समस्त सृष्टि की मूल प्रेरक शक्ति स्त्री तत्व है। देवी परंपरा में नारी को सृजन, संरक्षण और विनाश की अधिष्ठात्री माना गया है। दुर्गा, लक्ष्मी और सरस्वती जैसे रूपों में उसे शक्ति, समृद्धि और विद्या की प्रतीक के रूप में प्रतिष्ठा दी गई है। यह दार्शनिक दृष्टिकोण स्त्री को दिव्यता एवं सम्मान प्रदान करता है।[9]

प्रकृति और पुरुष के संबंध को भी भारतीय चिंतन में परस्पर पूरक माना गया है। अर्धनारीश्वर की अवधारणा यह दर्शाती है कि स्त्री और पुरुष मिलकर ही पूर्णता प्राप्त करते हैं। इससे लैंगिक समानता और सहअस्तित्व का संदेश मिलता है। नारी को 'माता', 'विद्या' और 'शक्ति' के रूप में संबोधित कर भारतीय समाज ने उसे सर्वोच्च आदर दिया है। विशेषतः देवी महात्म्य में देवी की महिमा का वर्णन करते हुए उसे समस्त शक्तियों का स्रोत बताया गया है, जो स्त्री गरिमा का दार्शनिक प्रतिपादन है।[10]

अंततः भारतीय ज्ञान परंपरा शिक्षा, आत्मज्ञान और मोक्ष की प्राप्ति में स्त्री–पुरुष दोनों को समान अधिकार प्रदान करती है। आत्मा के स्तर पर किसी भी प्रकार का भेद स्वीकार नहीं किया गया है। यही कारण है कि प्राचीन ग्रंथों में ज्ञान–साधना को सभी के लिए खुला मार्ग माना गया है। इस प्रकार स्त्री–सशक्तिकरण भारतीय संस्कृति का आधुनिक विचार नहीं, बल्कि उसकी प्राचीन दार्शनिक विरासत का अभिन्न अंग है। यह परंपरा आज भी सामाजिक समता, नैतिकता और मानव गरिमा की स्थापना में मार्गदर्शक सिद्ध होती है।

शिक्षा एवं ज्ञान–संस्थानों में स्त्री की भागीदारी

भारतीय ज्ञान परंपरा में शिक्षा को मानव जीवन के समग्र विकास का प्रमुख साधन माना गया है। शिक्षा का उद्देश्य केवल विद्या अर्जन नहीं, बल्कि चरित्र निर्माण, आत्मानुशासन, सामाजिक उत्तरदायित्व और आध्यात्मिक उन्नति था। प्राचीन गुरुकुल एवं आश्रम व्यवस्था इसी आदर्श पर आधारित थी, जहाँ गुरु और शिष्य का संबंध पारिवारिक एवं आत्मीय होता था। इस व्यवस्था में स्त्रियों को भी शिक्षा का अधिकार प्राप्त था और वे वेद, व्याकरण, तर्क, आयुर्वेद तथा कला विषयों का अध्ययन करती थीं। अनेक ग्रंथों में ब्रह्मवादिनी एवं विदुषी स्त्रियों का उल्लेख इस तथ्य की पुष्टि करता है कि शिक्षा में स्त्री की सहभागिता स्वीकृत और सम्मानित थी।[11]

बौद्ध एवं जैन परंपराओं ने भी स्त्रियों को ज्ञान–साधना का अवसर प्रदान किया। बौद्ध संघों में भिक्षुणी संघ की स्थापना ने स्त्रियों को आध्यात्मिक और बौद्धिक उन्नति का स्वतंत्र मार्ग दिया। जैन परंपरा में आर्यिकाओं और साध्वियों ने धर्मप्रचार, अध्ययन तथा अनुशासन के क्षेत्र में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। इन धार्मिक–सांस्कृतिक आंदोलनों ने शिक्षा को लिंगभेद से मुक्त करने का प्रयास किया और स्त्री को आत्मनिर्भरता की दिशा में प्रेरित किया।[12]

उच्च शिक्षा संस्थानों की परंपरा में नालंदा विश्वविद्यालय और तक्षशिला विश्वविद्यालय जैसे विश्वविख्यात केंद्रों का उल्लेख विशेष रूप से किया जाता है। यद्यपि इन संस्थानों में स्त्री शिक्षा के प्रत्यक्ष प्रमाण सीमित हैं तथापि साहित्यिक स्रोतों से यह संकेत मिलता है कि ज्ञानार्जन के अवसर स्त्रियों के लिए पूर्णतः बंद नहीं थे। भारतीय शिक्षा परंपरा की उदारता ने उन्हें बौद्धिक विकास का वातावरण प्रदान किया। इस प्रकार शिक्षा के क्षेत्र में स्त्री की उपस्थिति निरंतर बनी रही।[13]

आधुनिक काल में शिक्षा ने स्त्री सशक्तिकरण का सर्वाधिक प्रभावी माध्यम सिद्ध किया है। विद्यालयों, महाविद्यालयों और विश्वविद्यालयों में स्त्रियों की बढ़ती

भागीदारी ने उन्हें आत्मनिर्भर, जागरूक और आत्मविश्वासी बनाया है। आज महिलाएँ विज्ञान, प्रौद्योगिकी, चिकित्सा, साहित्य, प्रशासन और अनुसंधान के क्षेत्रों में उल्लेखनीय योगदान दे रही हैं। उच्च शिक्षा और नेतृत्व में उनकी उपस्थिति सामाजिक परिवर्तन का संकेत है। यह स्थिति भारतीय ज्ञान परंपरा की उस मूल भावना का पुनर्स्थापन है, जिसमें शिक्षा को सभी के लिए समान अधिकार माना गया है।[14]

सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक सशक्तिकरण

सामाजिक दृष्टि से स्त्री परिवार और समाज निर्माण की आधारशिला है। भारतीय संस्कृति में उसे 'गृहलक्ष्मी' और 'संस्कारों की प्रथम शिक्षिका' कहा गया है, क्योंकि वह भावी पीढ़ी के चरित्र और मूल्यों का निर्माण करती है। परिवार में प्रेम, सहयोग और नैतिकता का वातावरण निर्मित करने में उसकी भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण है। समाजशास्त्रियों का मत है कि किसी भी समाज की उन्नति स्त्रियों की स्थिति पर निर्भर करती है।[15]

आर्थिक आत्मनिर्भरता स्त्री सशक्तिकरण का अनिवार्य अंग है। जब स्त्री स्वयं आजीविका अर्जित करती है, तब उसकी सामाजिक प्रतिष्ठा और निर्णय क्षमता दोनों में वृद्धि होती है। स्वरोजगार, स्वयं सहायता समूह, लघु उद्योग, हस्तशिल्प तथा सेवा क्षेत्र में महिलाओं की सक्रियता ने ग्रामीण एवं शहरी अर्थव्यवस्था को नई दिशा दी है। इससे न केवल पारिवारिक आय में वृद्धि हुई है, बल्कि आत्मसम्मान और आत्मविश्वास भी सुदृढ़ हुआ है।[16]

राजनीतिक क्षेत्र में भी महिलाओं की सहभागिता निरंतर बढ़ रही है। पंचायत एवं स्थानीय शासन में आरक्षण ने उन्हें नेतृत्व का अवसर प्रदान किया है। ग्राम पंचायतों में महिला सरपंचों और सदस्यों की उपस्थिति ने स्थानीय समस्याओं के समाधान में संवेदनशीलता और पारदर्शिता लाई है। समकालीन योजनाएँ एवं नीतियाँ जैसे शिक्षा, स्वास्थ्य और सुरक्षा कार्यक्रम, महिला कल्याण को प्राथमिकता देती हैं। साथ ही संवैधानिक प्रावधानों ने समानता, स्वतंत्रता और गरिमा के अधिकारों को सुनिश्चित किया है। इस प्रकार सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक स्तर पर स्त्री सशक्तिकरण की प्रक्रिया सुदृढ़ हो रही है।[17]

आधुनिक भारत में स्त्री सशक्तिकरण और ज्ञान परंपरा का पुनर्पाठ

आधुनिक भारत में स्त्री सशक्तिकरण की प्रक्रिया परंपरा और आधुनिकता के समन्वय पर आधारित है। भारतीय ज्ञान परंपरा ने सदैव स्त्री को शक्ति, विद्या और सृजन का प्रतीक माना है, जबकि आधुनिक युग ने उसे संवैधानिक अधिकार और समान अवसर प्रदान किए हैं। इन दोनों दृष्टिकोणों का संतुलन स्त्री के समग्र विकास का मार्ग पशस्त करता है। वर्तमान शिक्षा नीतियाँ लैंगिक समानता पर विशेष बल देती हैं, जिससे शिक्षा के प्रत्येक स्तर पर महिलाओं की भागीदारी सुनिश्चित हो सके। यह स्थिति प्राचीन आदर्शों के पुनर्जीवन का संकेत देती है।[18]

डिजिटल साक्षरता और कौशल विकास ने महिलाओं को वैश्विक अवसरों से जोड़ दिया है। सूचना प्रौद्योगिकी, ऑनलाइन शिक्षा, उद्यमिता और नवाचार के क्षेत्र में उनकी सक्रियता आधुनिक सशक्तिकरण का नया आयाम प्रस्तुत करती है।

साथ ही सांस्कृतिक पुनर्जागरण के माध्यम से महिलाएँ कला, साहित्य, संगीत और परंपराओं के संरक्षण में अग्रणी भूमिका निभा रही हैं। इससे स्पष्ट होता है कि भारतीय ज्ञान परंपरा केवल अतीत की स्मृति नहीं, बल्कि वर्तमान और भविष्य की दिशा भी है।

नारीवाद और भारतीय दृष्टिकोण का तुलनात्मक अध्ययन यह दर्शाता है कि जहाँ पाश्चात्य नारीवाद अधिकारों की मांग पर बल देता है, वहीं भारतीय दृष्टिकोण कर्तव्य, समन्वय और सहअस्तित्व को महत्व देता है। दोनों के समन्वय से ही संतुलित और स्थायी सशक्तिकरण संभव है। अतः आधुनिक भारत में स्त्री सशक्तिकरण का पुनर्पाठ भारतीय ज्ञान परंपरा के मूल्यों, समानता, नैतिकता और आत्मसम्मान के आलोक में किया जाना चाहिए, जिससे समाज अधिक न्यायपूर्ण और समरस बन सके।

निष्कर्ष

उपरोक्त अध्ययन से स्पष्ट होता है कि भारतीय ज्ञान परंपरा में स्त्री को मूलतः सम्मान, गरिमा और अधिकारों के साथ स्वीकार किया गया है। वैदिक काल से ही स्त्री को ज्ञान, शिक्षा, धर्मकर्म और सामाजिक सहभागिता में समान अवसर प्राप्त थे। उसे 'सहधर्मिणी', 'ब्रह्मवादिनी', 'माता' और 'शक्ति' जैसे गौरवपूर्ण संबोधनों से प्रतिष्ठित किया गया, जो उसकी बौद्धिक क्षमता, नैतिक बल और सृजनात्मक सामर्थ्य को दर्शाते हैं। यद्यपि इतिहास के कुछ चरणों में सामाजिक रूढ़ियों एवं पितृसत्तात्मक व्यवस्थाओं के कारण उसकी स्थिति में अवनति आई तथापि भारतीय दर्शन और सांस्कृतिक मूल्यों ने सदैव स्त्री की गरिमा को संरक्षित रखने का प्रयास किया। इससे यह सिद्ध होता है कि स्त्री सम्मान भारतीय संस्कृति का मूल तत्व है, न कि आधुनिक काल की देन।

सशक्तिकरण की प्रक्रिया का आधार शिक्षा, आत्मनिर्भरता और सांस्कृतिक चेतना में निहित है। शिक्षा स्त्री को ज्ञान, विवेक और आत्मविश्वास प्रदान करती है; आर्थिक आत्मनिर्भरता उसे निर्णय लेने की क्षमता देती है; और सांस्कृतिक चेतना उसे अपनी पहचान एवं परंपरागत मूल्यों से जोड़ती है। जब ये तीनों तत्व समन्वित रूप से विकसित होते हैं, तब स्त्री न केवल व्यक्तिगत स्तर पर सशक्त होती है, बल्कि परिवार, समाज और राष्ट्र के विकास में भी सक्रिय योगदान देती है।

अतः यह निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि परंपरा और आधुनिकता के संतुलित समन्वय से ही वास्तविक महिला सशक्तिकरण संभव है। भारतीय ज्ञान परंपरा के नैतिक आदर्शों तथा आधुनिक संवैधानिक अधिकारों के संयुक्त प्रयास से एक समानतामूलक, न्यायपूर्ण और समरस समाज की स्थापना की जा सकती है, जहाँ स्त्री और पुरुष दोनों समान भागीदार हों।

सन्दर्भ

1. शर्मा, रामनाथ, भारतीय संस्कृति का स्वरूप, चौखम्बा प्रकाशन, वाराणसी, 2018, पृ0सं0– 45

2. मिश्र, हरिदत्त, भारतीय दर्शन का इतिहास, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, 2016, पृ0सं0– 72
3. पाण्डेय, शिवकुमार, प्राचीन भारतीय शिक्षा पद्धति, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2019, पृ0सं0– 110
4. त्रिपाठी, रामशरण, वैदिक संस्कृति और समाज, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, 2017, पृ0सं0– 88
5. शर्मा, हरिनारायण, प्राचीन भारत में नारी, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2019, पृ0सं0– 56
6. मिश्र, कपिलदेव, वैदिक साहित्य का इतिहास, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, 2015, पृ0सं0– 102
7. सिंह, केदारनाथ, भारतीय समाज का इतिहास, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 2016, पृ0सं0– 134
8. चतुर्वेदी, रामस्वरूप, भक्ति आंदोलन और भारतीय समाज, साहित्य भवन, आगरा, 2018, पृ0सं0– 179
9. पाण्डेय, उमाशंकर, भारतीय दर्शन के मूल तत्त्व, ज्ञानमंडल प्रकाशन, वाराणसी, 2017, पृ0सं0– 95
10. जोशी, गोविंदप्रसाद, शक्ति परंपरा का इतिहास, चौखम्बा संस्कृत सीरीज, वाराणसी, 2015, पृ0सं0– 121
11. पाण्डेय, शिवकुमार, प्राचीन भारतीय शिक्षा पद्धति, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2019, पृ0सं0– 68
12. शर्मा, विमलचंद्र, बौद्ध एवं जैन शिक्षा परंपरा, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, 2017, पृ0सं0– 104
13. मिश्र, हरिदत्त, भारतीय शिक्षा का इतिहास, ज्ञानभारती प्रकाशन, वाराणसी, 2018, पृ0सं0– 142
14. सिंह, उर्मिला, आधुनिक भारत में महिला शिक्षा, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 2020, पृ0सं0– 210
15. त्रिपाठी, केशवदेव, भारतीय समाज और नारी, साहित्य भवन, आगरा, 2018, पृ0सं0– 95
16. जोशी, माधुरी, महिला और आर्थिक विकास, ज्ञानदीप प्रकाशन, जयपुर, 2019, पृ0सं0– 133
17. वर्मा, राजेश, भारतीय संविधान और महिला अधिकार, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2021, पृ0सं0– 165
18. मिश्र, देवेंद्र, भारतीय संस्कृति और समकालीन समाज, चौखम्बा प्रकाशन, वाराणसी, 2020, पृ0सं0– 189